पेरिस
१० जून, २००६

संदेश संख्या – ६४

मुक्ति : किससे, किसके लिए

मुक्ति के लिए त्याग करना अथवा संन्यास ग्रहण करना और कुछ नहीं बल्कि 'जिससे मुक्ति चाहिए' उसका दमन और प्रतिक्रिया मात्र है । मुक्ति की यह अवधारणा अतीत पर आधारित है और इसीलिए यह मुक्ति कुछ सतही परिवर्तन एवं थोड़ा–बहुत सामंजस्य के साथ अतीत के बंधन की संशोधित सततता ही है ।

'जिससे मुक्ति चाहिए' वह बन्धन है। इस तरह यह बन्धन ही मुक्त होने का प्रयास करता है और स्वयं को और अधिक मजबूत करता है। इस तरह की मुक्ति राजनीतिज्ञों और मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी जाती है । कार्ल मार्क्स, माओ, फ्रायड, जुंग आदि ऐसी ही मुक्ति का वादा करते हैं ।

अतीत से मुक्ति के लिए अतीत का विश्लेषण करना आवश्यक नहीं। सभी विचार अतीत (स्मृति) से निकली अनुक्रियायें या प्रतिक्रियायें है। द्रष्टा और दृश्य के विभाजन के बिना प्रतिक्षण इन अनुक्रियाओं के प्रति निर्विकल्प सचेतनता में होना ही किसी व्यक्ति को मुक्त होने के लिए पर्याप्त है। द्रष्टा रूपी ''मैं'' या चेतना में विभेदकारी विभाजन, ही चुनाव करने वाला है, विकल्प में फँसता है और इसकी अन्तहीन गतिविधियाँ मुक्ति नहीं होने देतीं।

निर्विकल्पता (Choicelessness) इस 'मैं' रूपी चुनाव करने वाला की समाप्ति है। इसे समझना और मानसिक 'मैं' अकर्म के आयाम में उपलब्ध होना (प्रत्यत्न–शैथिल्य की अवस्था में होना) ही परम मुक्ति है।

तकनीकी 'मैं' तकनीकी कार्य–कलाप हेतु एक संदर्भ बिन्दु के रूप में कार्य करता है और वह बन्धन का निर्माण नहीं करता । किन्तु मानसिक 'मैं' बन्धन को मजबूती प्रदान करता है । तकनीकी समस्याओं में कर्त्ता और कम भिन्न होते हैं । यदि कार में कोई समस्या है तो उसका समाधान किया जा सकता है। क्योंकि यहाँ समाधान करने वाला कर्त्ता 'मैं' है और कार कर्म है । किन्तु जब मानसिक समस्या हो तो वहाँ निदानकर्त्ता 'मैं' है और समस्या भी 'मैं' ही है। चेतना के सभी अवयवों का समूह ही 'मैं' है किन्तु उन अवयवों के क्षेत्र से बाहर एक और 'मैं' को खड़ा किया जाता है, प्रक्षेपित किया जाता है । फिर स्वयं को बचाने के लिए ये दोनों एक दूसरे की मदद करते हैं, एक दूसरे का पोषण करते है और इस तरह चेतना में द्वैत के आत्मसंरक्षी–यन्त्ररचना का भ्रामक खेल चलता रहता है ।

तकनीकी दुनिया में विश्लेषण सही है क्योंकि वहाँ कर्त्ता और कर्म भिन्न होते हैं किन्तु मानसिक दुनिया में विश्लेषण घातक है। यहाँ कर्त्ता (विश्लेषण कर्त्ता) और कर्म (विश्लेषित) दोनों ही मन हैं । अतीत की बातों को कुरेदना जो स्वयं परस्पर विरोधी एवं अपूर्ण होती हैं और फिर उन्हें विभिन्न उपचार पद्धतियों यथा, ''जीवन पश्चगमन'' (पीछले जीवन में लौटकर उस समय की सूचनाओं पर आधारित) चिकित्सा पद्धति द्वारा उपचार करना मन का भयानक खेल है । ये उपचार पद्धतियाँ, जिससे मुक्ति चाहिए उससे केवल कुछ समय के लिए तदर्थ मुक्ति ही प्रदान करती हैं और इसलिए उन उपचार विशेषज्ञों के पास शेष जीवन में बार–बार जाना पड़ता है । यहाँ बीमार, उपचार विशेषज्ञों के अनुरूप अपने अतीत का निर्माण कर लेते हैं और उनसे कभी भी मुक्त नहीं हो पाते । राजनीतिक सुधारों में भी बार–बार सुधार की आवश्यकता होती है।

''इसलिए मुक्ति चाहिए''–यह विचार भविष्य आधारित है । यह एक काल्पनिक विचारधारा है। यह 'जो है' से अलग बनना है एवं मन का प्रक्षेपण है। यह 'जो है' से 'ऐसा होना चाहिए' में जाने की मन की युक्ति है। जिन्हें ज्ञान के बजाय भ्रांति पसन्द है, वे ही ऐसी मुक्ति खोजते हैं। ऐसी मुक्ति भी नयापन के नाम पर केवल पुनर्मूल्यांकन एवं पुनर्निर्माण मात्र है। इसमें मौलिक परिवर्तन नहीं घटित होता।

अतः 'जिससे मुक्ति चाहिए' और ''इसलिए मुक्ति चाहिए'' ये दोनों ही मुक्ति नहीं है।

यथार्थ मुक्ति मौलिक परिवर्तन और धार्मिक होती है और यह वर्तमान पर आधारित होती है । यहाँ परस्पर विपरीतों का विभु में लय हो जाता है। द्वैत का दिव्यता में विलय हो जाता है । बुद्ध, यीशु, लाओत्से, नानक, कबीर और अन्य जिसमें तुम भी हो (तुम अर्थात् मन के रूपमें नहीं बल्कि जीवन के रूप में), सभी पूर्ण रुपेण मुक्त हैं – पूर्ण एवं शर्त रहित । ''जो है'' के प्रति साक्षी भाव में होना, उससे न प्रतिरोध और न ही पलायन भाव में होना ही यथार्थ मुक्ति है ।

अतः 'जिससे मुक्ति चाहिए'–वह बंधन, चालाकी, प्रतिक्रिया और मन है। 'इसलिए मुक्ति चाहिए'–यह उन्मत्तता, 'जो है' से अलग बनना, पुनर्निर्माण और मन है जबकि यथार्थ मुक्ति – परमानन्द, परमपवित्र, धार्मिकता, निर्मन और जीवन है ।

यथार्थ मुक्ति ही निर्वाण और मोक्ष है ।